बिनय सिन्हा

वैश्विक व्यापार और वित्तीय वैश्वीकरण का द्वंद्व

यह दलील बुनियादी तौर पर गलत है कि कोई देश विश्व व्यापार में सक्रिय भागीदार हो सकता है लेकिन वह वित्तीय वैश्वीकरण से बच सकता है। जानकारी दे रहे हैं के पी कृष्णन

दुनिया अब तीन खेमों में बंट चुकी है। एक समूह ऐसे लोगों का है जो व्यापार और वित्तीय वैश्वीकरण दोनों का समर्थन करते हैं। दूसरा समूह ऐसे लोगों का जो राज्य का नियंत्रण चाहते हैं और दोनों तरह की स्वतंत्रता का विरोध करते हैं। तीसरा समूह उन लोगों का है जिनमें से कुछ सोचते हैं कि व्यापार की स्वतंत्रता होनी चाहिए लेकिन वित्तीय मोर्चे पर नहीं। संक्षेप में कहें तो वित्तीय वैश्वीकरण का भय तीन तर्कों पर आधारित है: प्राप्तकर्ता देशों में विनिमय दर में विसंगति आना, वैश्विक वित्तीय प्रवाह से जुड़ी अनिश्चितताएं और मौद्रिक नीति में स्वायत्तता को क्षति।

उदाहरण के लिए वित्तीय वैश्वीकरण का विरोध करने वाले अमेरिकी फेडरल रिजर्व तथा कई प्रमुख वैश्विक केंद्रीय बैंकों द्वारा हाल ही में की गई आक्रामक मौद्रिक सख्ती की ओर संकेत करते हैं तथा विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में इसके कारण उत्पन्न दिक्कतों का उल्लेख करते हैं। जब विकसित देशों के केंद्रीय बैंक ब्याज दरें बढ़ाते हैं तो वैश्विक पूंजी विकासशील देशों से बाहर जाती है। इससे मुद्रा का अवमूल्यन होता है और मुद्रास्फीति बढ़ती है। कहा जाता है कि दूरदराज घटी घटनाओं ने भी भारत को प्रभावित किया है।

जब उत्तर कोरिया यह तय करता है कि वह शेष विश्व के साथ व्यापार नहीं करेगा तो ऐसा करके वह वैश्विक व्यापारिक झटकों से भी बचता है। दूसरी ओर दुनिया के साथ कारोबार में शामिल होने का अर्थ है परस्पर निर्भरता। कह सकते हैं आयात की सुविधा, बेहतरीन वैश्विक केंद्रीय प्रसंस्करण इकाइयां तो आती हैं लेकिन कीमतों में उतार-चढ़ाव तथा आपूर्ति की बाधाओं के साथ।

अगर भारत ने भी उत्तर कोरिया की तरह वैश्वीकरण की राह रोकी होती तो क्या होता? देश के सबसे बड़े उद्योग यानी सूचना प्रौद्योगिकी को व्यापार वैश्वीकरण तथा विदेशी पूंजी से काफी मदद मिली है। वर्तमान समय की एक मशहूर आईटी कंपनी ने जब सन 1993 में अपना प्रारंभिक सार्वजनिक निर्गम (आईपीओ) पेश किया था तब वह पूरी तरह सबस्क्राइब नहीं हो पाया था। तब एक जाने माने अमेरिकी निवेश बैंक ने पेशकश मूल्य पर अच्छी खासी हिस्सेदारी खरीदकर उसे बचाया था। बाद में इस कंपनी के शेयर नैसडेक में भी सूचीबद्ध हुए थे। बाकी बातें इतिहास का हिस्सा हैं।

यह उन भारतीय कंपनियों के कई उदाहरणों में से एक है जिनके पास भौतिक संपत्तियां कम हैं लेकिन वे बड़ी पूंजी जुटाने में कामयाब रहीं। बिना वित्तीय वैश्वीकरण के यह असंभव था। भारतीय फाइनैंसर अपने आईटी उद्योग को तब तक नहीं समझ सके जब तक यह स्थापित नहीं हो गई। वेंचर कैपिटल या निजी इक्विटी या आईपीओ, परिवक्वता के हर मोड़ पर विदेशी पूंजी ने जोखिम उठाया तब जाकर यह श्रेणी स्थापित हो सकी। इसी प्रकार यह कल्पना करना मुश्किल है कि अगर विदेशी पूंजी नहीं होती तो देश में बड़े पैमाने पर नवीकरणीय ऊर्जा निवेश कैसे होता। इसमें ईएसजी फंड ने नेतृत्व किया।

अब देखते हैं तीन दलीलें जो वित्तीय वैश्वीकरण के खिलाफ हैं।

पहली दलील: क्या हमें विनिमय दर की विसंगति को लेकर चिंतित होना चाहिए? हमें याद रखना होगा कि विनिमय दर एक और मूल्य भर है और मुक्त बाजार जानता है कि सही मूल्य कैसे हासिल होगा। हमें ऐसे अधिकारियों और अर्थशास्त्रियों पर सवाल उठाना चाहिए जो सोचते हैं कि उन्हें स्टील, बिजली, पेट्रोल या किसी भी विनिमय दर का सही मूल्य मालूम है। सभी बाजारों में कीमतों में उतार-चढ़ाव आता है ताकि मांग और आपूर्ति का संतुलन बना रहे।

सभी बाजारों की तरह यहां भी ऐसे प्रतिभागी होते हैं जो एक खास स्तर की मूल्य अस्थिरता नहीं चाहते। उनके लिए वित्तीय व्यवस्था एक शुल्क की बदौलत बिकवाली से बचाव मुहैया कराती है। जो तयशुदा मूल्य की शांति और स्थिरता चाहते हैं वे एक खास कीमत पर इसे पा सकते हैं। उन्हें चर मूल्य का सशुल्क तयशुदा कीमत के साथ विनिमय करना होता है। हर व्यक्ति या हर कंपनी को ये निर्णय लेने होते हैं। जोखिम के बदले इन बाजारों का लाभ लेने के लिए वित्तीय आर्थिकी की मजबूत समझ जरूरी है। भारत में इस क्षेत्र में अभी काफी कुछ करने की आवश्यकता है।

दूसरी दलील: वैश्विक संबद्धता से जुड़ी अनिश्चितताओं को देखें तो वित्तीय वैश्वीकरण व्यापारिक वैश्वीकरण से अलग नहीं है। दोनों की कीमत होती है। इनके साथ अलग तरह की अनिश्चितताएं होती हैं लेकिन तात्कालिक लाभ भी होते हैं। जरूरत है बेहतर सोच तथा मजबूत संस्थानों की जो अनिश्चितताओं से निपट सकें।

तीसरी दलील: मौद्रिक नीति स्वायत्तता गंवाने की बात करें तो यह भी अच्छी तरह समझी हुई बात है। भारत जैसे देशों ने इस समस्या को हल करने के लिए मुद्रास्फीति को निशाना बनाने का तरीका अपनाया। आइए एक नजर इस बात पर डालते हैं कि भारत में आने-जाने वाली वित्तीय पूंजी की क्या स्थिति है। सन 2021-22 में 776 अरब डॉलर की राशि भारत में आई और 738 अरब डॉलर की राशि देश से बाहर गई। बहुत बड़ी धनराशि है जो देश की ढेर सारी कंपनियों और परिवारों से ताल्लुक रखती है। अगर इसे रोका गया तो बहुत अधिक उथलपुथल मच जाएगी। इसी प्रकार चालू खाते में 798 अरब डॉलर की राशि आई और 837 अरब डॉलर राशि बाहर गई। कुछ लोग पुराने दिनों को याद करेंगे जब भारत काफी हद तक उत्तर कोरिया जैसा था लेकिन हमें अपने अब तक के सफर की सराहना करनी चाहिए।

चालू खाते और पूंजी खाते दोनों में पूंजी प्रवाह इतना अधिक क्यों है? इस बारे में एक पुराना विचार यह है कि पूंजी कारोबार के पीछे आती है। एक बार अंतरराष्ट्रीय व्यापार शुरू होने के बाद व्यापार, ऋण, मुद्रा जोखिम प्रबंधन, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आदि के रूप में पूंजी का आना शुरू हो जाता है। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाएं तथा उत्पादन तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों की व्यापारिक व्यवस्थाओं के लिए व्यवस्थित वित्तीय ढांचे और उपायों की आवश्यकता होती है। यह केवल कुछ अर्थशास्त्रियों के मन में बनी मनोवैज्ञानिक धारणा है कि पूंजी प्रवाह में राज्य के हस्तक्षेप के बावजूद कारोबार फल-फूल सकता है।

सन 1960 के दशक में मुख्यधारा के अर्थशास्त्री सोचते थे कि उन्हें यह पता है कि स्टील की सही कीमत क्या होनी चाहिए? वह समय बहुत पीछे छूट चुका है लेकिन कई अर्थशास्त्री अब भी सोचते हैं कि उन्हें पता है कि विनिमय दर क्या होनी चाहिए। एक बार जब हम इन बातों से आगे निकलेंगे तो कारोबार और फाइनैंसिंग दोनों मोर्चों पर बौद्धिक प्रतिमान अधिक आरोपित होंगे। आज हर विकसित अर्थव्यवस्था के पास उच्चस्तरीय सीमापार स्वतंत्रता है। खुली वित्तीय सीमाएं भारत की वृद्धि और समृद्धि की आकांक्षाओं का अभिन्न अंग हैं।

(लेखक पूर्व लोक सेवक, सीपीआर में मानद प्रोफेसर एवं कुछ लाभकारी एवं गैर-लाभकारी निदेशक मंडलों के सदस्य हैं)